अपभ्रंश साहित्य का राजस्थानी नीतिकाव्य पर प्रभाव

[1]डॉ. सुधा शर्मा
[1]सेवानिवृत्त प्रधानाचार्या
[1]2/229 मुक्ता प्रसाद नगर, बीकानेर–334004, राजस्थान, भारत

सारांश : अपभ्रंश भाषा के साहित्य को समाज में उच्च एवं गौरवशाली स्थान प्राप्त रहा है। इसी अपभ्रंश भाषा से जन्मी राजस्थानी भाषा का साहित्य अनेक दृष्टियों से अपभ्रंश साहित्य का ऋणी है। राजस्थानी नीतिकाव्य की परम्पराओं का निर्माण संस्कृत, पालि, प्राकृत एवं अपभ्रंश की क्रमिक परम्पराओं के आत्मसात एवं विकास से सम्भव हुआ है। इस कारण अपभ्रंश साहित्य का राजस्थानी नीतिकाव्य के विविध क्षेत्रों पर व्यापक प्रभाव पड़ा है। इस शोधपत्र में अपभ्रंश साहित्य का संक्षिप्त परिचय देते हुए उसके राजस्थानी नीतिकाव्य पर प्रभाव का विवेचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है, जो एक नवीन प्रयास है।

मूलशब्द **– अपभ्रंश साहित्य, राजस्थानी नीतिकाव्य**

1. प्रस्तावना – अपभ्रंश भाषा का परिचय हमें ईसवी सन् के आस पास ही मिलने लगता है। भरतमुनि के नाट्य शास्त्र में अपभ्रंश के प्रयोग की चर्चा की गई है। उन्होंने अपभ्रंश को आभीरोक्ति कहा है तथा इसे उकार बहुला बताते हुए इसके कतिपय उदाहरण भी प्रस्तुत किए हैं। भामह[1] तथा दण्डी[2] ने अपभ्रंश का साहित्यिक भाषा के रूप में स्पष्ट उल्लेख किया है। राजशेखर (880–920 ई.) के समय में अपभ्रंश राजसभाओं तथा विद्वत्परिषदों में भी आदर पाने लगी थी।[3] आनन्दवर्धन, मम्मट, भोज, वाग्भट[4], रामचन्द्र, गुणचन्द्र, जिनदत्त, अमरचन्द्र आदि अनेक कवियों तथा प्राचीन लेखकों ने भी अपभ्रंश का साहित्यिक भाषा के रूप में उल्लेख किया है। भोज ने लिखा है कि गुर्जरों को अपनी अपभ्रंश भाषा ही अच्छी लगती है।[5] छठी शताब्दी के आसपास जैन लेखकों द्वारा साहित्य रचना के लिए इसका उपयोग होने लगा। गुप्तोत्तर काल में अपभ्रंश को विशेष महत्त्व प्राप्त हुआ और वह देश की केन्द्रीय भाषा बन गई। आचार्य हेमचन्द्र[6] ने अपभ्रंश का व्याकरण लिखकर इसे स्थिरता प्रदान की और इसे परिष्कृत रूप प्रदान किया। शब्द ग्रहण, शब्द से अर्थ प्रतीति प्रक्रिया तथा व्याकरण आदि की दृष्टि से अपभ्रंश अत्यन्त उदार रही है। अपनी इन्हीं विशेषताओं के कारण यह लोक परम्पराओं से जुड़ी रही। जन–साधारण की शक्ति से संवलित होकर अपभ्रंश दीर्घ काल तक साहित्य की भाषा ही नहीं बनी अपितु आधुनिक आर्य भाषाओं की जन्मदात्री भी बनी। इसी अपभ्रंश भाषा से जन्मी राजस्थानी भाषा का साहित्य अनेक दृष्टियों से अपभ्रंश साहित्य का ऋणी है। राजस्थानी नीतिकाव्य की परम्पराओं का निर्माण संस्कृत, पालि, प्राकृत एवं अपभ्रंश की क्रमिक परम्पराओं के आत्मसात एवं विकास से सम्भव हुआ है। इस कारण अपभ्रंश साहित्य का राजस्थानी नीतिकाव्य के विविध क्षेत्रों पर व्यापक प्रभाव पड़ा है। इस शोधपत्र में अपभ्रंश साहित्य का संक्षिप्त परिचय देते हुए उसके राजस्थानी नीतिकाव्य पर प्रभाव का विवेचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है, जो एक नवीन प्रयास है।

2. अपभ्रंश साहित्य का संक्षिप्त परिचय

अपभ्रंश भाषा के साहित्य को समाज में उच्च एवं गौरवशाली स्थान प्राप्त रहा है। राजशेखर ने अपनी रचना *'काव्यमीमांसा'* में लिखा है – *'ससंकृतमपभ्रंशं लालित्यालिङ्गितं पठेत्'*[7] अर्थात् 'संस्कृत और अपभ्रंश की कविता को लालित्य के साथ पढ़ना चाहिए'। अपभ्रंश साहित्य के तीन स्वरूप मिलते हैं –

(1) जैन अपभ्रंश साहित्य (2) बौद्ध एवं नाथ सिद्ध साहित्य (3) ऐहिकतापरक साहित्य।

2.1 जैन अपभ्रंश साहित्य

जैन अपभ्रंश साहित्य ने व्यक्ति और समाज के लिए नैतिक आदर्शों एवं जीवन मूल्यों की स्थापना में बहुमूल्य योगदान दिया है। इस साहित्य के अन्तर्गत दो धाराएँ – मुक्तक काव्यधारा तथा प्रबन्ध काव्यधारा दृष्टिगत होती हैं।

2.1.1 मुक्तक काव्य धारा

मुक्तक काव्यधारा के अन्तर्गत दो उपधाराएँ – रहस्यवादी धारा तथा उपदेशात्मक धारा मिलती हैं।

2.1.1.1 रहस्यवादी धारा

जैन धर्म में भी अन्य भारतीय धर्मों के समानान्तर एक रहस्यवादी भावधारा प्रवाहित होती रही है। इस भावधारा के अनुसार – *'आत्मा और परमात्मा एक होते हुए भी भिन्न हैं, यही रहस्य है तथा इस भिन्नत्व में एकत्व स्थापित करने की पद्धति रहस्यवाद है।'*[8] जैन रहस्यवाद की मान्यता है कि परमात्मा बाह्य पदार्थों में नहीं अपितु शरीर रूपी मन्दिर में आत्मा के रूप में विद्यमान है। उसे बाह्याचार्यों से प्राप्त नहीं किया जा सकता। जैन रहस्यवादी धारा के प्रमुख कवि योगीन्दुदेव (योगीन्द्रदेव), मुनि रामसिंह तथा सुप्रभाचार्य हैं। इनके द्वारा प्रचारित साधना–पथ उदार एवं व्यापक है।

योगीन्दुदेव की दो प्रमुख कृतियाँ – *'परमात्मप्रकाश'*[9] और *'योगसार'*[10] हैं। *'परमात्मप्रकाश'* में योगीन्दुदेव ने आध्यात्मिक गूढ़वाद तथा नैतिक उपदेशों को सहज रूप में व्यक्त किया है। *'योगसार'* का भी विषय अध्यात्म प्रधान ही है। नैतिक आदर्शों का पालन एवं निस्पृह भावना से कर्मक्षय के लिए प्रयत्न करना, उनकी साधना के मूल आधार हैं। यद्यपि शास्त्रज्ञान, तीर्थ और देवालय में उनकी आस्था प्रतीत नहीं होती, तथापि इनके खण्डन करने में उनकी वाणी में हठ अथवा कटुता दृष्टिगत नहीं होती। मुनि रामसिंह की कृति *'पाहुड़ दोहा'*[11] का प्रधान विषय भी आध्यात्मिक रहस्यवाद ही है। *'पाहुड़ दोहा'* का अर्थ है – उपहार के दोहे। इस कृति के विवेच्य विषय गुरु, आत्मा, शरीर, आत्मसुख, समरसी भाव, मोक्ष, विषय, कर्म आदि हैं। जैन मुनि ने अपनी इस रचना में धार्मिक कट्टरता से पृथक् होकर अपनी अनुभूतियों को व्यक्त किया है तथा अनेक उपयोगी नीति वचन कहे हैं। सुप्रभाचार्य अपनी रचना *'वैराग्य सार'*[12] में माया और ममता को त्याग कर वैराग्य अपनाने को सार बताते हैं। वे गृस्थाश्रम को उचित मानते हैं, यदि वह अनुचित व्यवहार से मुक्त हो।

2.1.1.2 उपदेशात्मक धारा

उपदेशात्मक धारा के प्रमुख कवि देवसेन, जिनदत्त सूरि और महेश्वर सूरि हैं। इनकी रचनाओं में सामान्य गृहस्थों के लिए धर्म और नीति विषयक उपदेश दृष्टिगत होते हैं। देवसेन की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कृति *'सावयधम्मदोहा'*[13] है। इस रचना में देवसेन ने एक आदर्श चरित्र गृहस्थ के लिए करणीय तथा अकरणीय सामाजिक एवं धार्मिक कर्मों को स्पष्ट किया है। वे उच्च आदर्श युक्त समाज के निर्माण हेतु उत्सुक प्रतीत होते हैं। जिनदत्त सूरि की *'चर्चरी'*[14], *'उपदेश रसायन सार'*[15] तथा *'कालस्वरूपकुलक'*[16] तीन कृतियाँ हैं, जो *'अपभ्रंशत्रयी'* नाम से प्रकाशित हुई हैं। *'चर्चरी'* में कवि द्वारा अपने गुरु की प्रशंसा और उनके कार्यों का वर्णन है। *'उपदेश रसायन सार'* में मनुष्य जन्म के महत्त्व तथा आत्मोद्धार का उपदेश दिया गया है। *'कालस्वरूपकुलक'* में गुरु वचनों में श्रद्धा रखने, कुगुरु से सावधान रहने तथा पारिवारिक संबंधों में एकता एवं परस्पर अनुराग द्वारा सुख की प्राप्ति का उपदेश दिया गया है। महेश्वर सूरि ने अपनी रचना *'संयम मंजरी'*[17] में जीवन में संयम के महत्त्व को स्पष्ट कर, उसे मोक्ष का द्वार बताया है। उन्होंने संयम द्वारा मोक्ष एवं निरन्तर सुख प्राप्ति का उपदेश दिया है।

2.1.2 प्रबन्ध काव्यधारा

प्रबन्ध काव्यधारा में स्वयंभू का *'पउमचरिउ'*[18], पुष्पदन्त के *'महापुराण'*[19], *'जसहरचरिउ'*[20], *'णायकुमारचरिउ'*[21] तथा धनपाल का *'भविसयत्तकहा'*[22] आदि हैं। इनमें यत्र–तत्र विभिन्न विषयक नीति वचन दृष्टिगत होते हैं। इन काव्यों में नायक सदैव मनुष्य लोक का ही व्यक्ति है। उसे अवतारी अथवा अद्भुत स्वरूप प्रदान करने का कहीं प्रयास नहीं किया गया है। उसे सामान्य जन की भाँति समस्याओं से जूझता हुआ ही चित्रित किया गया है। फलस्वरूप अपभ्रंश साहित्य जन साहित्य की संज्ञा से विभूषित हुआ। शुभ कर्म करने वाले को शुभ फल तथा चरम लक्ष्य (निर्वाण) की प्राप्ति होती है – यह इस चिन्तन की सामान्य विशेषता है। इन काव्यों में जगत और जीवन के प्रति एक संतुलित वैराग्यपूर्ण नश्वरता की प्रतिच्छवि दृष्टिगत होती है। चिन्तक कवियों के एक विशाल समूह द्वारा संसार और मनुष्य के लिए करणीय–अकरणीय आचरण संबंधी स्थापित आदर्शों को स्पष्ट करने के लिए यह साहित्य पर्याप्त है।

2.2 बौद्ध एवं सिद्ध साहित्य

बौद्ध धारा के अन्तर्गत सिद्धों का साहित्य आता है। सिद्धों में सरहपा, कण्हपा, भुसुकपा, विरूपा, तिलोपा तथा लुईपा प्रधान हैं। इनकी रचनाएँ *'दोहा कोष'*[23] और *'चर्यापद'* रूप में मिलती हैं। सिद्धों ने सहजसुख को सर्वश्रेष्ठ आनन्द माना है। इस आनन्द की प्राप्ति के लिए गुरु की सहायता आवश्यक है। उनकी मान्यता है कि सहजसुख की प्राप्ति से संसार के समस्त दुःख नष्ट हो जाते हैं तथा ज्ञान का प्रकाश उदित होता है। इसके लिए किसी तन्त्र, मन्त्र, आगम आदि शास्त्र ज्ञान की आवश्यकता नहीं। सिद्ध सरहपा ने करुणा, माया, जीव, जगत, परमपद आदि आध्यात्मिक विषयों पर अपने नीतिगत विचार व्यक्त किये हैं। कतिपय पद्यों में संसार में शुभ कर्म (यथा – दान, परोपकार आदि) करने का नैतिक उपदेश भी यत्र–तत्र दृष्टिगत होता है।

काश्मीर के शैव संप्रदाय की कृतियों में भी यत्र–तत्र अपभ्रंश का प्रयोग मिलता है। अभिनवगुप्त की प्रधान रचना *'तन्त्रसार'*[24] में 16 अपभ्रंश पद्य मिलते हैं। संभवतः उन्होंने जनता में अपने दर्शन को प्रचारित करने हेतु अपभ्रंश को अपनाया है। इस कृति में शैव मत की व्याख्या करते हुए उन्होंने अपना यह मत व्यक्त किया है कि व्यक्ति स्वयं परम शिव है। अज्ञान के आवरण के कारण परम शिव दृष्टिगत नहीं हो पाता। ज्ञान की सहायता से ही परम शिव का अनुभव किया जा सकता है। भट्ट वामदेव माहेश्वराचार्य की रचना *'जन्ममरणविचार'*[25] के अनुसार एक ही आदि देव की स्वतन्त्र महिमा इस संसार में सर्वत्र व्याप्त है। आत्मा के स्वरूप के संबंध में भी उन्होंने अपना विवेचन प्रस्तुत किया है।

2.3 ऐहिकतापरक साहित्य

अपभ्रंश की ऐहिकतापरक धारा इसकी विशुद्ध साहित्यिक धारा है, जो धार्मिक अथवा सांप्रदायिक विचार धारा से पूर्णतः मुक्त है। इसकी दो उपधाराएँ हैं – प्रबन्धकाव्य उपधारा तथा मुक्तक उपधारा। प्रबन्ध काव्यों में – अब्दुल रहमान का *'सन्देशरासक'*[26] तथा विद्यापति की *'कीर्तिलता'*[27] आदि हैं, जिनका नीति की दृष्टि से विशेष महत्त्व नहीं है। मुक्तक उपधारा नीति की दृष्टि से अधिक सम्पन्न है। हेमचन्द्र ने अपनी रचना *'प्राकृत व्याकरणम्'*[28] के अष्टम् अध्याय में अपभ्रंश का व्याकरण प्रस्तुत किया है, जिसमें अनेक अपभ्रंश पद्य उद्धृत किए हैं। इनमें से अनेक विभिन्न विषयक नीतिपरक पद्य हैं। इसी प्रकार *'प्राकृत पैंगलम्'*[29], राजशेखर सूरि कृत *'प्रबन्धकोश'*[30], आचार्य मेरुतुंग द्वारा संकलित *'प्रबन्धचिंतामणि'*[31] तथा *'पुरातन प्रबन्ध संग्रह'*[32] में नीति के छन्द प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं। इनमें गृहस्थ, स्त्री, भाग्य, सज्जन–दुर्जन, प्रेम, उन्नति में विनम्रता, धन तथा भाग्य सम्बन्धी अनेक सूक्तियाँ संचित हैं। कतिपय अन्योक्तियाँ भी अत्यन्त सुन्दर एवं प्रभावशाली स्वरूप में कही गई हैं।

अपभ्रंश साहित्य के अवलोकन से यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि यह साहित्य धर्म और आचार के क्षेत्र में अत्यन्त सम्पन्न है, परन्तु लोक व्यवहार नीति के क्षेत्र में न्यून है। राजनीति के क्षेत्र में यह प्राकृत के समान प्रायः शून्य सा है।

3. अपभ्रंश साहित्य का राजस्थानी नीतिकाव्य पर प्रभाव

अपभ्रंश साहित्य के राजस्थानी नीतिकाव्य पर प्रभाव को प्रमुखतः दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है –

(1) भावगत प्रभाव (2) शिल्पगत प्रभाव

3.1 भावगत प्रभाव

भाव एवं विचार के क्षेत्र में राजस्थानी नीतिकाव्य अपभ्रंश साहित्य से व्यापक रूप से प्रभावित हुआ है। अनेक उदाहरणों में भाव–साम्यता दृष्टिगत होती है तथा वर्ण्य विषयों में भी समानताएँ हैं। अनेक स्थलों पर राजस्थानी नीति कवियों ने अपभ्रंश साहित्य की भाव सम्पदा को ग्रहण कर राजस्थानी में अपने शब्दों में स्थानीय जनजीवन के उदाहरणों सहित व्यक्त कर दिया है। कतिपय स्थलों पर मूल भावों का विस्तारीकरण, संक्षिप्तीकरण अथवा नवीन तथ्यों को समाहित कर काव्य रचना की है। कहीं–कहीं अपभ्रंश साहित्य से गृहीत नीतिपरक भावों को नव्य स्वरूप भी प्रदान किया गया है। इस प्रकार कवियों ने अपने नीतिकाव्य को निजता एवं लोक्यता प्रदान की है। भाव–साम्यता के कतिपय उदाहरण दृष्टव्य हैं –

जीव हिंसा से नरक तथा जीव दया से स्वर्ग प्राप्त होता है –

अपभ्रंश – **पाणि चलणि रअ गइ, जीव दरे ण सग्गु।**
वेण्णिवि पन्था कहिअ मइ, जहिं जाणसि तहिं लग्गु।।[33]

(जीव हिंसा से नरक प्राप्त होता है तथा जीव दया से स्वर्ग। मैंने दोनों मार्ग दिखा दिए हैं, जो आपके लिये अच्छा हो उसे चुन लो।)

राजस्थानी – **जीव़ वधंतां नरक–गति, अवधंतां गति सग्ग।**
हूं जाणूं दोय वट्टड़ी, जो भावै़ तिण लग्ग।।[34]

दुष्ट जन के संग से सज्जन को भी कष्ट उठाना पड़ता है –

अपभ्रंश – **भल्लाण वि णासंति गुण नहिं सहु संगु खलेहिं।**
वयसाणरु लोहहं मिलिउ पिट्टिज्जइ सुघणेहिं।।[35]

(खल – दुष्टजन के संग से भले पुरुषों के गुण भी नष्ट हो जाते हैं, जैसे लोहे का संग करने से वैश्वानर (अग्निदेव) को भी बड़े–बड़े घनों से पीटा जाता है।)

राजस्थानी – **डरपै बूंटै वांस के, भार अढारह रूंख।**
बखना ! बळकर बाळसी, कु–संगती को रूंख।।[36]

कृपण की सम्पत्ति की निरर्थकता को इस प्रकार व्यक्त किया गया है –

अपभ्रंश – **काइं बहुत्तइं संपयइं जइ किविणहं घरि होइ।**
उवहिणीरु खारें भरिउ पाणिउ पियइ ण कोइ।।[37]

(बहुत सम्पत्ति से भी क्या यदि वह कृपण के घर हुई। समुद्र का जल खार से भरा है। उसका पानी कोई नहीं पीता।)

राजस्थानी – **सूमां रै घर सोय, हेम तणां परबत हुवै।**
काम न आवै़ कोय, मनखां दूजां मोतिया।।[38]

सज्जन के लक्षण इस प्रकार बताए गए हैं –

अपभ्रंश – **जे निअहिं न पर–दोस, गुणिहिं जि पयडिअ तोस।**
ते जगि महाणुभावा, बिरला सरल–सहावा।।[39]

(जो दूसरों के दोष नहीं देखते हैं तथा उनके गुणों को प्रसन्नता के साथ प्रकट करते हैं, ऐसे सरल स्वभाव वाले महानुभाव बिरले ही होते हैं।)

राजस्थानी – **निज गुण ढांकण नेक वित, पर–गुण गिण गावं़त।**
अैसा जग में सुजन जण, विरळा ही पावं़त।।[40]

निष्कर्षतः अपभ्रंश साहित्य का राजस्थानी नीतिकाव्य पर भावगत दृष्टि से व्यापक प्रभाव पड़ा है।

3.2 शिल्पगत प्रभाव

अपभ्रंश साहित्य के राजस्थानी नीतिकाव्य पर षिल्पगत प्रभाव का विवेचन निम्नलिखित तीन क्षेत्रों में किया गया है–

(1) शैलीगत प्रभाव (2) अलंकृतिपरक प्रभाव (3) छन्दपरक प्रभाव

3.2.1 शैलीगत प्रभाव – नीतिकाव्य के सृजन में नीतिकार कवियों का ध्येय अध्येता को विविध विषयक नीतितत्त्वों का सन्देष प्रदान कर, उचित–अनुचित का ज्ञान कराना रहा है। इस हेतु प्राचीनकाल से ही नीतिकाव्य के लिए शैली का सरल, स्पष्ट तथा प्रभावषाली होना आवष्यक माना गया है। उक्त विषेषताएँ अपभ्रंश नीतिकाव्य तथा राजस्थानी नीतिकाव्य, दोनों में ही समान रूप से परिलक्षित होती हैं।

इसके साथ ही अपभ्रंश तथा राजस्थानी कवियों ने नीतिकाव्य के सृजन में कतिपय विशिष्ट प्रचलित एवं परम्परित शैलियों को अपनाया है। इनमें उपदेशात्मक, सूक्त्यात्मक, अन्योक्ति, प्रश्न एवं प्रश्नोत्तर तथा हास्यव्यंग्यात्मक शैलियों को प्रधानता प्राप्त है। राजस्थानी नीतिकाव्य में कतिपय अन्य शैलियों का प्रयोग भी यत्र–तत्र दृष्टिगत होता है।

3.2.1.1 उपदेशात्मक शैली – उपदेशात्मक शैली का अभिप्राय है – सीधी और स्पष्ट भाषा में उपदेश देना। काव्य की यह नीरस शैली मानी जाती है। इसमें कवि व्यक्ति अथवा समूह से सीधे उपदेश के स्वर में नीति की बात कहता है। अपभ्रंश साहित्य के नीतिपरक ग्रन्थों में इस शैली का व्यापक प्रयोग दृष्टिगत होता है। यथा –

उजु रे उजु छाड्डि मा लेहु रे वक।
णिअहि बोहि मा जाहु रे लाड्क।।[41]

(अरे सरल मार्ग को छोड़कर कुटिल मार्ग को ग्रहण मत करो। ज्ञान निकट है, कहीं दूर मत जाओ।)

यहाँ 'मा लेहु' तथा 'मा जाहु' शब्दों का प्रयोग कर कवि ने उपदेषक की भाँति करणीय–अकरणीय कार्यों के प्रति निर्देषित किया है।

राजस्थानी के मुक्तक काव्यों में तथा सन्त कवियों की बत्तीसी, छत्तीसी, बावनी आदि नीतिपरक काव्य रचनाओं में इस शैली का प्रयोग किया गया है। इस शैली का एक उदाहरण दृष्टव्य है –

सादो रखणो भेष, मीठो सब स्यूं बोलणो।
काहूं सैं भी द्वेष, रखणो नहीं रै शेखरा।।[42]

उपर्युक्त उदाहरण से स्पष्ट है कि उपदेषात्मक शैली में नीति कथन की परम्परा का निर्वाह अपभ्रंश नीतिकाव्य के अनुसरण में हुआ है।

3.2.1.2 सूक्त्यात्मक शैली – 'सूक्ति' का सामान्य अर्थ है सौष्ठवपूर्ण कथन। भावपूर्ण अथवा चमत्कारपूर्ण उक्ति 'सूक्ति' कहलाती है। अपभ्रंश नीतिकाव्य की यह बहुप्रयुक्त शैली है। इस शैली की प्रथम विशेषता है – बात उपदेशात्मक शैली की भाँति सीधे नहीं कही जाती, वरन् किसी उदाहरण द्वारा अप्रस्तुत का समर्थन किया जाता है, यथा –

जइ गिहत्थु दाणेण विणु जगि पभणिज्जइ कोइ।
ता गिहत्थु पंखि वि हवइ जें घरु ताह वि होइ।।[43]

(यदि दान के बिना भी जगत में कोई गृहस्थ कहलावे, तो पक्षी भी गृहस्थ हो गया क्योंकि घर तो उसके भी होता है।)

राजस्थानी नीतिकाव्य में भी अपभ्रंश नीतिकाव्य के समान इस शैली के अनेक उदाहरण मिलते हैं, एक उदाहरण दृष्टव्य है –

मळया गिर मंझार, हर–कोई तरू चंदण हुवै।
संगत लहै सुधार, रूखां ही नै, राजिया।।[44]

सूक्त्यात्मक शैली की दूसरी विषेषता है – कथन विधि का सौन्दर्य। इसमें किसी शब्दालंकार के सहारे अथवा किसी एक शब्द की पुनरावृत्ति कर प्रभाव उत्पन्न किया जाता है। यह आवृत्ति संज्ञा, सर्वनाम, क्रिया, अव्यय अथवा विषेषण पदों की, की जाती है। इस प्रकार की आवृत्ति से नीतिकथन अधिक रोचक एवं हृदयग्राही बन जाते हैं। अपभ्रंश के अधिकांष नीतिकाव्यों में इस स्वरूप का व्यापक प्रयोग हुआ है। कतिपय उदाहरण दृष्टव्य हैं –

संज्ञापद आवृत्ति – **गुरु दिणयरु गुरु हिमकरणु गुरु दीवउ गुरु देउ।**
अप्पापरहं परंपरहं जो दरिसावइ भेउ।।[45]

सर्वनामपद आवृत्ति – **हउँ गोरउ हउँ सामलउ हउँ जि विभिण्णउ वण्णु।**
हउँ तणु–अंगउँ थूलु हउँ एहउँ मूढउ मण्णु।।[46]

संज्ञा व क्रिया पद – **मुंडिय मुंडिय मुंडिया सिरु मुंडिय चित्तु ण मुंडिया।**
आवृत्ति **चित्तहं मुंडणु जिं कियउ संसारहं खंडणु तिं कियउ।।**[47]

संज्ञा व अव्यय पद – **विरला जाणहिं तत्तु वुहु विरला णिसुणहिं तत्तु।**
आवृत्ति **विरला झायहिं तत्तु जिय विरला धारहिं तत्तु।।**[48]

राजस्थानी नीतिकाव्य में भी विभिन्न पदों की आवृत्ति द्वारा उक्ति को सुन्दर और प्रभावोत्पादक बनाने की प्रवृत्ति अपभ्रंश नीतिकाव्य से ही ग्रहण की गई प्रतीत होती है। तुलनात्मक रूप में राजस्थानी नीतिकाव्य के कतिपय उदाहरण दृष्टव्य हैं –

संज्ञा पद आवृत्ति – **वचन–वचन में आंतरो, वचन कै हाथ न पांव।**
वही वचन है ओखधी, वही वचन दै घाव।।[49]

क्रिया पद आवृत्ति – **डाढ़ खटक्कै काकरौ, रजी खटक्कै नैण।**
रयौ खटक्कै बावळौ, गयौ खटक्कै सैण।।[50]

अव्यय पद आवृत्ति – **गुण बिन ठाकर ठीकरौ, गुण बिन मीत गंवार।**
गुण बिन चंदण लाकड़ी, गुण बिन नार कुनार।।[51]

इस प्रकार सूक्त्यात्मक शैली का अपभ्रंश नीतिकाव्य के अनुसरण में राजस्थानी नीतिकाव्य में सुष्ठु प्रयोग किया गया है।

3.2.1.3 अन्योक्ति शैली – अन्योक्ति में, प्रस्तुत का कथन न कर, उसके समान अप्रस्तुत का कथन किया जाता है। इस शैली में कवि नीतिकथन सीधे प्रस्तुत न कर, उसके समान गुण धर्म के आधार पर पषु, पक्षी, वृक्ष, समुद्र, बादल आदि के माध्यम से अप्रत्यक्ष रूप से नीति निर्देषन करते हैं। अपभ्रंश तथा राजस्थानी दोनों भाषाओं के नीतिकाव्यों में अन्योक्ति शैली का बहुलता से प्रयोग मिलता है। अपभ्रंश में अन्योक्ति शैली में नीतिकथन का एक उदाहरण दृष्टव्य है –

सेवक की स्वामिभक्ति को धवल (बैल) के माध्यम से इस प्रकार व्यक्त किया गया है –

अपभ्रंश – **धवलु विसूरइ सामिअहो गरुआ भरु पिक्खेवि।**
हउ कि न जुत्तउ दुहु दिसिहिं खण्डइ दोण्णि करेवि।।[52]
(स्वामी के गुरु भार को देखकर धवल (बैल) विसूरता है कि मैं ही दो खण्ड करके दोनों ओर क्यों नहीं जोत लिया जाता।)

राजस्थानी नीतिकाव्य पर अपभ्रंश नीतिकाव्य की इस शैली का व्यापक प्रभाव दृष्टिगत होता है। अनेक स्थलों पर अन्योक्तियों के विषय भी समान मिलते हैं। राजस्थानी में मुक्तक ग्रन्थों में नीतिविषयक विविध अन्योक्तियाँ दृष्टिगत होती हैं। एक उदाहरण दृष्टव्य है –

हंस आ पारख्खड़ी, छीलर जळ न पियंत।
मान सरोवर कै पियै, कै तरसिया भमंत।।[53]
यहाँ हंस के माध्यम से दृढ़ता से अपने नियम का पालन करने वाले सज्जन पुरुष की ओर संकेत है।

इस प्रकार नीतिकथन की अन्योक्ति शैली का प्रयोग अपभ्रंश नीतिकाव्य तथा राजस्थानी नीतिकाव्य में समान रूप से हुआ है।

3.2.1.4 प्रश्न तथा प्रष्नोत्तर शैली – अपभ्रंश नीतिकाव्य में प्रष्न तथा प्रष्नोत्तर शैली में नीतिकथन यत्र–तत्र दृष्टिगत होते हैं। राजस्थानी नीतिकाव्य के सृजन कर्त्ताओं की रचनाओं में उनके अधिकांष रूपों का अनुसरण स्पष्ट रूप में मिलता है, जो अपभ्रंश नीतिकाव्य के शैलीगत प्रभाव का द्योतक है।

एक स्वरूप में छन्द की प्रत्येक पंक्ति में प्रष्न होता है तथा प्रष्न में ही उत्तर का भाव व्यंजित होता है। यथा –

जं दिज्जइ तं पावयइ एउ ण वयणु विसुद्धु ?
गाइ पइण्णइ खडभुसइं किं ण पयच्छइ दुद्धु ?[54]
(जो दिया जाता है, वही प्राप्त होता है, यह वचन क्या विशुद्ध नहीं है ? गाय को खली–भूसा खिलाया जाता है, तो क्या वह दूध नहीं देती ?)

इस शैली का राजस्थानी नीतिकाव्य में यत्र–तत्र प्रयोग किया गया है। एक उदाहरण दृष्टव्य है –

मोराँ विन डूँगर किसा, मेह विन किसी मलार ?
त्रियाँ विना तीजाँ किसी, पिव विन किसा तिवार ?[55]

नीतिकथन की प्रष्नोत्तर शैली में प्रथम पंक्ति में एक प्रष्न प्रस्तुत किया जाता है जिसका उत्तर एक नीतिकथन होता है तथा उसे द्वितीय पंक्ति में व्यक्त किया जाता है। इस शैली को अपभ्रंश तथा राजस्थानी नीतिकाव्यों की रचनाओं में समान रूप से अपनाया गया है। उदाहरणार्थ –

अपभ्रंश – **सुपुरिस कड्गुहे अणुहरहिं भण कज्जें कवणेण ?**
जिवँ जिवँ वड्डत्तणु लहहिं तिवँ तिवँ नवहिं सिरेण।।[56]

राजस्थानी – **जळ न डुबोव़त काठकूँ, कहो काहेकी प्रीत ?**
अपणा सींच्या जाणकर, यही बडाँकी रीत।।[57]

राजस्थानी नीतिकार कवियों की रचनाओं में इस शैली के आंषिक परिवर्तन भी दृष्टिगत होते हैं। यत्र–तत्र एक दोहे में प्रष्न तथा द्वितीय दोहे में उत्तर मिलता है, जिसमें नीतिकथन व्यंजित होता है।

3.2.1.5 हास्यव्यंग्यात्मक शैली – अपभ्रंश नीतिकाव्य में नीतिकथन के लिए हास्यव्यंग्यात्मक शैली का यत्र–तत्र प्रयोग दृष्टिगत होता है। अल्प ज्ञान, धार्मिक आडम्बर, कृपणता, धन लोलुपता, माया–मोह में लिप्तता, दुर्जनता, कुसंगति आदि अनेक विषयों पर तीखे व्यंग्य द्वारा नीति–शिक्षा प्रदान करने का प्रयास किया गया है। एक उदाहरण दृष्टव्य है –

तित्थइं तित्थ भमेहि वढ धोयउ चम्मु जलेण।
एहु मणु किम धोएसि तुहुं मइलउ पावमलेण।।[58]

(हे मूर्ख ! तूने एक तीर्थ से दूसरे तीर्थ भ्रमण किया और अपने चर्म को जल से धोया। परन्तु यह तो बता कि इस मन को जो पाप रूपी मैल से मैला है, कैसे धोएगा ?)

राजस्थानी नीतिकाव्य में भी हास्यव्यंग्यात्मक शैली का नीतिकथन में प्रचुरता से प्रयोग हुआ है। कविराज बाँकीदास के *'कृपणदर्पण', 'चुगलमुखचपेटिका', 'कायरबावनी', 'कृपण पच्चीसी', 'वैसकवार्ता'* तथा कवि ऊमरदान के *'सन्त असन्त सार', 'तमाखू की ताड़ना', 'विभचार री बुराई', 'कलदार री करामात', 'सूमसतक'* आदि रचनाओं में इस शैली का व्यापक उपयोग हुआ है। इसके अतिरिक्त अनेक कवियों की स्फुट रचनाओं में भी यत्र–तत्र हास्यव्यंग्यात्मक शैली का उपयोग दृष्टिगत होता है, जो अपभ्रंश नीतिकाव्य के राजस्थानी नीतिकाव्य पर शैलीगत प्रभाव को इंगित करता है।

'कायर बावनी' का यह दोहा कायर का हास्यव्यंग्यात्मक चित्र प्रस्तुत कर कायरता को नीतिगत दृष्टि से वीरभूमि राजस्थान में त्याज्य बतलाता है–

पैलो खोसै पाघड़ी, हँसे दिखालूँ दंत।
कायर मोनैं क्यों कहै, सुद्ध सुभावाँ संत।।[59]

इस प्रकार अपभ्रंश तथा राजस्थानी दोनों नीतिकाव्यों में हास्यव्यंग्यात्मक शैली का यत्र–तत्र प्रयोग हुआ है।

राजस्थानी नीतिकाव्य में उपर्युक्त वर्णित शैलियों के अतिरिक्त व्यक्ति सम्बोधन शैली, तथा संख्यात्मक शैली का भी व्यापक प्रयोग दृष्टिगत होता है।

3.2.2 अलंकृतिपरक प्रभाव –

अपभ्रंश और राजस्थानी साहित्य में 'अलंकार' शब्द सौन्दर्य तथा सौन्दर्यवर्द्धक तत्त्वों के रूप में ग्रहण किया गया है। नीतिकथन में सौन्दर्यवृद्धि हेतु शब्दालंकार तथा अर्थालंकार दोनों का प्रयोग हुआ है।

3.2.2.1 शब्दालंकार

अपभ्रंश साहित्य की नीतिपरक रचनाओं में अनुप्रास, यमक तथा श्लेष अलंकारों का प्रयोग हुआ है। राजस्थानी नीतिकाव्य में इन शब्दालंकारों के साथ–साथ राजस्थानी के सर्वथा मौलिक अलंकार – 'वयण सगाई' का भी व्यापक प्रयोग दृष्टिगत होता है।

3.2.2.1.1 अनुप्रास

शब्दालंकारों में अनुप्रास प्रमुख अलंकार है, जिसका अपभ्रंश नीतिकाव्य में व्यापक प्रयोग किया गया है। एक उदाहरण दृष्टव्य है –

णिच्चु णिरंजणु णाणमउ परमाणंद–सहाउ।
जो एहउ सो संतु सिउ तासु मुणिज्जहि भाउ।।[60]

राजस्थानी नीतिकाव्य में अनुप्रास के प्रयोग का एक उदाहरण भी प्रस्तुत है –

वैण विलास विनोद विधि, विद्या विनय विवेक।
वेस बड़प्पन बातड़ी, धन बिन भलो न एक।।[61]

3.2.2.1.2 यमक

यमक अलंकार का प्रयोग दोनों नीतिकाव्यों में चमत्कार उत्पन्न करने के लिये हुआ है, यथा –

जिह गोवउ पालइ गोमंडलु, तिह पालउ गोवइ गोमंडलु।[62]
(गोवउ : गोप, गोवइ : राजा, गोमंडलु : गो–समूह, भूमि)

यहाँ राजा की प्रजा–वत्सलता का परिचय देने के लिए यमक का प्रयोग किया गया है।

एक उदाहरण राजस्थानी नीतिकाव्य से भी दृष्टव्य है –

दीयेका गुण तेल है, दीया मोटी वात।
दीया जगमें चानणा, दीया चालै साथ।।[63]

यहाँ *'दीया'* शब्द दो भिन्न–भिन्न अर्थों में प्रयुक्त हुआ है अतः यमक अलंकार है।

3.2.2.1.3 श्लेष

अपभ्रंश नीतिकाव्य के धार्मिक एवं लौकिक मुक्तकों में श्लेष अलंकार का यत्र–तत्र प्रयोग दृष्टिगत होता है, यथा –

लोहिण जडिउ जु पोउ स फुट्टइ।
चुंबुकु जहि पहाणु किव वट्टइ ?।।
नेय समुद्दह पाक सु पावइ।
अंतराल तसु आवय आवइ।।[64]

इस छंद में *'लोहिण'* तथा *'पहाणु'* श्लिष्ट शब्द हैं। *'लोहिण'* का अर्थ लोभ और लोहा हैं तथा *'पहाणु'* का अर्थ प्रधान और नाव दोनों हैं।

राजस्थानी नीतिकाव्य से भी एक उदाहरण दृष्टव्य है –

पाणी री आ आब, मोती माणस दोनुवाँ।
मंगळ झळकै आब, जदतांअीं रै आबरू।।[65]

'आब' का अर्थ मोती के लिए चमक तथा मनुष्य के लिए सम्मान के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

राजस्थानी नीतिकाव्य में शब्दालंकारों के प्रयोग की प्रवृत्ति अपभ्रंश नीतिकाव्य से ग्रहण की गई है। उपर्युक्त वर्णित शब्दालंकारों के अतिरिक्त राजस्थानी नीतिकाव्य में सर्वथा मौलिक अलंकार *'वयण सगाई'* के प्रयोग का एक उदाहरण भी दृष्टव्य है –

तरु संतोष तणेह, नर छाया बैठा नहीं।
कळकळती किरणेह, बाँका भटकै लोभ बन।।[66]

3.2.2.2 अर्थालंकार

अपभ्रंश नीतिकाव्य में प्रमुखतः रूपक, दृष्टान्त, अतिशयोक्ति आदि अलंकारों का प्रयोग दृष्टिगत होता है। राजस्थानी नीतिकाव्य में इन अलंकारों के साथ–साथ अन्य अलंकारों को भी नीतिपरक रचनाओं में स्थान मिला है।

3.2.2.2.1 रूपक

अपभ्रंश साहित्य की नीतिपरक रचनाओं में रूपकों का विविधता एवं प्रचुरता से प्रयोग हुआ है। इससे रचनाओं में पर्याप्त सरसता का संचार हुआ है। मुनि रामसिंह ने लोकजीवन से रूपकों का चयन कर उन्हें उपदेशों में स्थान दिया है। उन्होंने मन की शक्ति और सबलता को हाथी से तथा इन्द्रियों की विशालता की व्यंजना विन्ध्य पर्वत के रूपक से की है। मनरूपी हाथी शीलरूपी वन को सहज ही नष्ट कर सकता है –

अम्मिय इहु मणु हत्थिया विंझह जंतउ वारि।
तं भजेसइ सीलवणु पुणु पडिसइ संसारि।।[67]

कवि पुष्पदन्त ने सांग रूपक के द्वारा जिन को कल्पवृक्ष के रूप में अंकित किया है। उनके अनुसार शम–दम कल्पवृक्ष के मूल हैं, समस्त जीव–निकाय उसकी शाखाएँ हैं, सुकृत उसके फल–पुष्प हैं, देवता उसके सिंचन करने वाले माली हैं तथा पुण्य रूपी जल के द्वारा वह वृद्धि प्राप्त करता है –

समदममूलउ जमसाहालउ
सुकय हलुग्गमो जिणकप्पद् दुमो।
अतरामएहिं सिंचिज्जमाणु, सोहइपुण्णेण पवड्ढमाणु।[68]

राजस्थानी नीतिकाव्य में विशेष रूप से संत कवियों के काव्य में रूपक अलंकार का प्रयोग प्रचुरता से किया गया है। संत कवि रज्जब ने दुःख और दिनकर (सूर्य) का रूपक प्रस्तुत किया है –

दुख दिनकर की दृष्टि करि, नेह नीर नभिं जाहिं।
रज्जब रमिये शून्य में, यहै जुगति जग माहिं।।[69]

कवि बाँकीदास ने शरीर रूपी तालाब को दुःख रूपी जल से भरा बताकर अभेद आरोप किया है –

तन दुख नीर तड़ाग, रोज विहंगम रूखड़ो।
विसन सलीमुख बाग, जरा बरक ऊतर जबल।।[70]

इस प्रकार अपभ्रंश नीतिकाव्य के अनुसरण में राजस्थानी नीतिकाव्य में भी रूपक अलंकार का व्यापक प्रयोग हुआ है।

3.2.2.2 दृष्टान्त

अपभ्रंश के जैन तथा सिद्ध कवियों ने अपने मुक्तकों में दृष्टान्त अलंकार का प्रचुरता से प्रयोग किया है। कवि योगीन्दुदेव ने मन को पाँचों इन्द्रियों का नायक माना है। उसे वश में करते ही समस्त इन्द्रियाँ स्वतः ही वश में हो जाती हैं। उन्होंने इस नीतिपरक तथ्य को स्पष्ट करने के लिए यह दृष्टान्त प्रस्तुत किया है कि वृक्ष की जड़ काट देने से पत्ते स्वतः ही सूख जाते हैं। वास्तव में यह सहज रूप से सर्वमान्य है –

पंचहँ णायकु वसिकरहु जेण होति वसि अण्ण।
मूल विणट्ठइ तरु–वरहँ अवसइँ सुक्कहिं पण्ण।।[71]

सिद्ध कवियों ने अपने गूढ़ भावों को समझाने के लिए विविध दृष्टान्तों का आश्रय लिया है। सिद्ध सरहपाद के एक दृष्टान्त के अनुसार तरुफल के दर्शन मात्र से क्षुधा की तृप्ति नहीं होती तथा वैद्य के देखने मात्र से रोग नहीं भागता –

तरुफल दसिसणे ण्णउ अघाइ।
वेज्ज देक्खि किं रोग पलाइ।।[72]

राजस्थानी नीति काव्य में भी दृष्टान्त अलंकार का बहुलता से प्रयोग हुआ है। उदाहरणार्थ –

जुगड़ै रो अंधियार, ग्यान दीप सूं ई मिटै।
गंगा जी री धार, मैल मिटावै भायला।।[73]

यहाँ ज्ञानदीप से मन के अन्धकार का निवारण और गंगाजी द्वारा मैल (पाप) मिटाने में बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव है।

बैरी बैर न वीसरै, बिना हियै ही बंक।
राह ग्रहै राकेस नूं, नभ सिर मात्र निसंक।।[74]

शत्रु द्वारा बैर नहीं भूलने और राहु द्वारा चन्द्रमा को ग्रसने में परस्पर समान धर्म है।

3.2.2.3 अतिशयोक्ति

अपभ्रंश नीतिकाव्य में अतिशयोक्ति के यत्र–तत्र अद्भुत कल्पनाएँ दृष्टिगत होती हैं। पुष्पदन्त ने अपनी कृति 'महापुराण' में बलराम के मुख से नेमि की शक्ति के वर्णन में अतिशयोक्ति का प्रयोग किया है –

जसु तेएं कंपइ रविमंडलु, पायहिं जासु पडइ आइंडलु।
सगरि ससागर महि उच्चलइ, तो सत्त वि सायर उत्थल्लइ।।[75]

कहीं–कहीं साम्यमूलक तथा विरोधमूलक तत्त्वों को परस्पर मिलाकर अतिशयोक्ति प्रस्तुत की गई है। इसमें से यदि अलंकारिता का परिहार कर दिया जाय तो उक्ति सत्य ही दृष्टिगत होती है। आचार्य हेमचन्द्र ने अपनी रचना 'छन्दोऽनुशासन' में एक पद्य प्रस्तुत किया है, जिसमें कीर्ति को अद्भुत गंगा का रूपक दिया गया है। तत्पश्चात् कीर्ति गंगा और सामान्य गंगा में विरोध दर्शित किया है। सामान्य गंगा पर्वत से उतरती है और सागर में विलीन हो जाती है। किन्तु कीर्ति गंगा पर्वतों पर आरोहित होती है और सागर का भी उल्लंघन कर जाती है –

लंघइ सायर गिरि आरुहइ, तुह अहंग।
ससिसेहरद्दसिउज्जल नउरवी कित्तिगंगा।।[76]

राजस्थानी नीतिकाव्य में भी इसी प्रवृत्ति के अनुसरण में कहीं–कहीं नीति कथन में अतिशयोक्ति दृष्टिगत होती है। एक उदाहरण दृष्टव्य है –

खग धारां घोड़ां नरां, सिमिट भरयो सह पाण।
इण थी मुरधर तरळ जळ, पाताळां परमाण।।[77]

मरुभूमि में पानी की कमी है। वह गहराई में ही उपलब्ध होता है। इसके कारण को स्पष्ट करने में कवि ने अद्‌भुत अतिशयोक्ति का सृजन किया है। कवि के कथनानुसार इस वीर भूमि की तलवारों में, यहाँ के घोड़ों में तथा यहाँ के वीर पुरुषों में सारा पानी (तेजस्विता) एकत्र होकर भर गया है। इसीलिए यहाँ पानी की कमी है और वह पाताल में पहुँच गया है।

इस प्रकार राजस्थानी नीति कवियों ने अपभ्रंश साहित्य से प्रभावित होकर अपनी रचनाओं को सौन्दर्य प्रदान करने हेतु अनुप्रास, यमक, श्लेष, रूपक, दृष्टान्त, अतिशयोक्ति आदि अलंकारों का प्रयोग किया है, किन्तु उन्होंने अन्य अलंकारों यथा – वयण सगाई, उपमा, उत्प्रेक्षा, प्रतिवस्तूपमा, अप्रस्तुतप्रशंसा, अर्थान्तरन्यास आदि का भी सुन्दर प्रयोग किया है।

3.3 छंदपरक प्रभाव

छंदों के क्षेत्र में राजस्थानी नीतिकाव्य अपभ्रंश साहित्य का सर्वाधिक ऋणी है। राजस्थानी का बहुप्रचलित दोहा छंद अपभ्रंश छंद परम्परा की ही देन है। दोहा अपने आप में मुक्तक काव्य का सफल वाहक है। अपभ्रंश साहित्य में ही सर्वप्रथम मात्रिक छंदों को विशेष स्थान मिला और नये–नये मात्रिक छंदों का सृजन हुआ। छंदों के अन्त में तुक मिलाने की शैली का प्रचलन भी सर्वप्रथम अपभ्रंश में ही हुआ तथा तुकान्त छंद अपभ्रंश छंद परम्परा के प्रतीक बन गए। दोहे के अतिरिक्त चौपाई, पद्धड़िया तथा धत्ता छंदों का प्रचलन प्रारम्भ हुआ। धत्ता दोहे से भिन्न छंद है। यह 62 मात्राओं का होता है। इसकी प्रथम पंक्ति में 10, 8, 13 पर यति होती है। द्वितीय चरण में भी यही क्रम रहता है। शनैः शनैः अपभ्रंश में बड़े छंद लिखे जाने लगे। रोला, उल्लाला, वीर, कव्व, छप्पय, कुण्डलिया आदि अपभ्रंश के अपने छंद हैं। छप्पय और कुण्डलिया में ओजस्वी कविताएँ लिखी जाने लगीं।

संक्षेप में अपभ्रंश के छंदों की दो प्रमुख विशेषताएँ रहीं –

(1) प्रायः अपभ्रंश कवियों ने अपने छंदों का नाम भी यथास्थान दिया है। छंद के नाम का उल्लेख छंद के बाहर अथवा भीतर किया गया है।
(2) इनमें अन्त्यनुप्रास का प्रयोग मिलता है। यह अपभ्रंश के कवियों की अपनी मौलिक सूझ थी।

प्राचीन रूढ़ि को उसी रूप में स्वीकार न कर उसमें परिवर्तन कर नवीनता उत्पन्न करने की प्रवृत्ति अपभ्रंश कवियों के स्वभाव में ही थी। इसी क्रम में अपभ्रंश कवियों ने जहाँ भी प्राचीन वर्णवृत्तों का प्रयोग किया, वहाँ नवीनता उत्पन्न कर दी। उदाहरणार्थ – मालिनी छंद में जहाँ यति होनी चाहिए वहाँ पर भी अन्त्यनुप्रास का प्रयोग कर, मालिनी के एक चरण के दो चरण बना दिये। इस प्रकार एक सम चतुष्पद मालिनी छंद अर्धसम अष्टपद मालिनी छंद बन गया। इसके अतिरिक्त वर्णवृत्तों में भी इन कवियों ने नियमों का कठोरता से पालन नहीं किया। इन्होंने एक दीर्घ अक्षर के स्थान पर दो लघु अक्षरों का प्रयोग कर भी वर्णवृत्तों का निर्वाह कर लिया। इसके साथ ही इन्होंने दो छंदों के मेल से भी अनेक नवीन छंदों का सृजन किया।

राजस्थानी कवियों ने अपभ्रंश कवियों के अनुसरण में दोहा, सोरठा, चौपाई, कुण्डलिया, छप्पय आदि मात्रिक तथा सवैया, कवित्त आदि वर्णिक छंदों का प्रयोग अपनी नीतिपरक रचनाओं के सृजन में किया। इन कवियों ने सर्वाधिक काव्य दोहा–सोरठा छंद में रचा है। व्यक्ति सम्बोधन शैली का नवीन प्रयोग इन कवियों ने प्रारम्भ किया, जो अत्यन्त सफल और लोकप्रिय रहा। इसी क्रम में राजिया, मोतिया, चकरिया, भानिया, भायला, बावळा आदि को सम्बोधित अनेक नीतिपरक दोहे–सोरठों का सृजन हुआ, जिनको उनकी संक्षिप्तता और गेयता के कारण कण्ठस्थ करने में लोकजन को अत्यन्त सुविधा रही। इसके साथ ही इन कवियों ने राजस्थानी के सर्वथा मौलिक अलंकार 'वयण सगाई' का प्रयोग कर अपनी रचनाओं में ध्वन्यात्मक तथा नादात्मक सौन्दर्य की वृद्धि की।

इसके साथ ही कुण्डलिया छंद (शुद्ध कुण्डलिया, कुण्डलिया राजवट और झड़उलट) में भी नीतिपरक रचनाओं का सृजन हुआ। इनमें ऊमरदान रचित *'तमाखू री ताड़ना'*[78] (कतिपय पद्य), अस्तअलीखां मलकांण रचित *'कुण्डलिया सतसई'*[79], केसरीकांत शर्मा 'केसरी' रचित *'आज रा कुण्डलिया'*[80] तथा धर्मवर्द्धन रचित *'कुण्डलिया बावनी'*[81] विशेष उल्लेखनीय हैं। इसके अतिरिक्त छप्पय छंद का प्रयोग धर्मवर्द्धन कृत *'छप्पय बावनी'*[82] तथा ऊमरदान कृत *'तमाखू री ताड़ना'*[83] (कतिपय पद्य), *'अमल रो औगण'*[84], *'विभचार री बुराई'*[85] आदि रचनाओं में दृष्टिगत होता है। राजस्थानी जैन कवियों ने सवैया तेवीसा तथा सवैया इकतीसा में भी अपनी उपदेशपरक रचनाओं का सृजन किया है। कवि ऊमरदान ने चौपाई छंद का प्रयोग अपनी कृति *'कळदार–करामात'*[86] में किया है।

राजस्थानी नीति कवियों ने अपभ्रंश कवियों के अनुसरण में तुकान्त छंदों का प्रयोग तो किया ही, साथ में अपनी रचनाओं में छंदों के नाम भी अनेक कवियों ने यथा स्थान दिये हैं। इसके अतिरिक्त दो छंदों को मिलाकर नया छंद गढ़ने का कार्य भी किया गया है। इन

कवियों ने एक दोहा और एक चन्द्रायणा छंद मिलाकर नया छंद झमाल बनाया। इस मेल में दोहे और चन्द्रायणा में सिंहावलोकन होता है अर्थात् दोहे का अन्तिम शब्द चन्द्रायणा के आदि में आता है। झमाल छंद लोकजीवन में अत्यन्त लोकप्रिय हुआ।

वास्तव में अपभ्रंश की छंद परम्परा ही कालान्तर में विकसित होकर राजस्थानी की छंद परम्परा बनी है। अन्य शब्दों में राजस्थानी नीतिकाव्य छंदों के क्षेत्र में अपभ्रंश साहित्य से पूर्ण रूप से प्रभावित रहा है।

4. निष्कर्ष – अपभ्रंश साहित्य के राजस्थानी नीतिकाव्य पर प्रभाव के विवेचनात्मक अध्ययन से यह तथ्य स्पष्ट होता है कि अपभ्रंश साहित्य और राजस्थानी नीतिकाव्य का दीर्घ काल से प्रगाढ़ सम्बन्ध रहा है। वास्तव में अपभ्रंश साहित्य की परम्पराओं के आत्मसात एवं विकास से ही राजस्थानी नीतिकाव्य की परम्पराओं का निर्माण हुआ है। इस कारण राजस्थानी नीतिकाव्य पर भावगत तथा शैलीगत दृष्टि से व्यापक प्रभाव पड़ा है तथा भाव, शैली, अलंकार, भाषा और छंद सभी प्रभावित हुए हैं।

राजस्थानी नीति कवियों ने अपनी नीतिपरक रचनाओं में अपभ्रंश की भाव सम्पदा को ग्रहण कर, राजस्थानी में अपने शब्दों में, स्थानीय जनजीवन के उदाहरणों सहित व्यक्त किया है। कतिपय स्थलों पर मूल भावों का संक्षिप्तीकरण, विस्तारीकरण अथवा नव्य स्वरूप दृष्टिगत होता है। विवेच्य विषयों में भी अनेक समानताएँ हैं।

इन कवियों ने अपभ्रंश साहित्य की सरल, स्पष्ट एवं प्रभावशाली शैलियों का उपयोग कर अपने नीति कथनों को सम्प्रेषणीयता प्रदान की है। इसी क्रम में इन्होंने उपदेशात्मक, सूक्त्यात्मक, अन्योक्ति, प्रश्न–प्रश्नोत्तर तथा हास्य–व्यंग्यात्मक शैलियों को प्रधानता दी है। इन्होंने इन शैलियों में *'व्यक्ति सम्बोधन शैली'* का समावेश कर अपनी रचनाओं को अधिक सरस और हृदयग्राही बनाकर जन–जन का कण्ठहार बना दिया है।

कवियों ने अपभ्रंश साहित्य के अनुकरण में अनुप्रास, यमक, श्लेष, रूपक, दृष्टान्त, अतिशयोक्ति आदि अलंकारों का सहज प्रयोग किया है। कहीं भी विद्वत्ता प्रदर्शन दृष्टिगत नहीं होता। इसके साथ ही इन्होंने राजस्थानी के अनूठे और सर्वाधिक मौलिक शब्दालंकार 'वयण सगाई' का निर्वाह कर रचनाओं में कर्णप्रिय ध्वन्यात्मक सौन्दर्य की सृष्टि की है।

शब्द भण्डार और छंदों के क्षेत्र में राजस्थानी नीतिकाव्य अपभ्रंश साहित्य का सर्वाधिक ऋणी है। राजस्थानी में बहुलता से प्रयुक्त एवं सर्वाधिक लोकप्रिय *'दोहा'* छंद वस्तुतः अपभ्रंश की ही देन है, जिसमें नीतिकाव्य का प्रचुरता से सृजन हुआ है। राजस्थानी नीति कवियों ने अपभ्रंश साहित्य के अनुकरण में तुकान्त छंदों का बहुलता से प्रयोग किया है तथा छंदों के नाम भी यथा स्थान दिये हैं। इसके साथ ही अपभ्रंश साहित्य की भाँति दो छंदों को मिलाकर नवीन छंद बनाने की प्रवृत्ति राजस्थानी नीतिकाव्य में भी दृष्टिगत होती है। ये सभी तथ्य छंदपरक प्रभाव के साक्षी हैं।

निष्कर्षतः राजस्थानी नीतिकाव्य भावगत तथा शिल्पगत दोनों क्षेत्रों में अपभ्रंश साहित्य से व्यापक रूप से प्रभावित हुआ है।

सन्दर्भ :

1. 'संस्कृतं प्राकृतञ्चान्यदपभ्रंश इति त्रिधा' – काव्यालंकार (भामह), 1–16।
2. 'तदेतद् वाङ्मयं भूयः संस्कृतं प्राकृतं तथा। अपभ्रंशश्च मिश्रं चेत्याहुरार्या श्चतुर्विधम्।।' – काव्यादर्श (दण्डी), 1–32।
3. राजशेखर, 1916, 'काव्यमीमांसा', (सं.) सी. डी. दलाल, सेन्ट्रल लाइब्रेरी, बड़ौदा, पृ. 6, 33, 34, 48, 50 एवं 55 पर अपभ्रंश का उल्लेख है।
4. 'अपभ्रंशस्तु यच्छुद्धं तत्तद्देशेषु भाषितम्।' – वाग्भटालंकार (वाग्भट), 2–3।
5. 'अपभ्रंशेन तुष्यन्ति स्वेन नान्येन गुर्जराः।' – सरस्वतीकण्ठाभरणम् (राजा भोजदेव), निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, 1934, पृ. 142।
6. हेमचन्द्राचार्य, 1928, 'प्राकृत व्याकरणम् (सिद्धहेमचन्द्रस्याष्टमोऽध्याय)', मोतीलाल लड्ढा, पूना सिटी।
7. राजशेखर, 1916, 'काव्यमीमांसा', पूर्वोद्धृत, अध्याय 7, पृ. 33।
8. जैन, प्रेमचन्द्र, 1991, 'रहस्यवादी जैन अपभ्रंश काव्य का हिन्दी पर प्रभाव', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 17।
9. योगीन्दुदेव, 1978, 'परमात्मप्रकाश', (सं.) ए. एन. उपाध्ये, परम–श्रुत–प्रभावक मण्डल, अगास।
10. योगीन्दुदेव, वि. सं. 1993, 'योगसार', (सं.) ए. एन. उपाध्ये, परम–श्रुत–प्रभावक मण्डल, बम्बई।
11. मुनि रामसिंह, 1992, 'पाहुड़ दोहा', अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन, खैरागढ़, जिला. राजनॉदगॉव (म. प्र.)।
12. तोमर, रामसिंह, 1964, 'प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य तथा उनका हिन्दी साहित्य पर प्रभाव', हिन्दी परिषद् प्रकाशन, प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रयाग, पृ. 80।
13. देवसेन, 1932, 'सावयधम्मदोहा', (सं.) हीरालाल जैन, कारंजा जैन पब्लिकेशन सोसायटी, कारंजा, बैरार।
14. जिनदत्त सूरि, 1967, 'अपभ्रंशकाव्यत्रयी', (सं.) लालचन्द्र भगवानदास गाँधी, ओरियन्टल इंस्टीट्यूट, बड़ौदा, पृ. 1–27।
15. वही, पृ. 29–66।
16. वही, पृ. 67–80।
17. तोमर, रामसिंह, 1964, 'प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य तथा उनका हिन्दी साहित्य पर प्रभाव', पूर्वोद्धृत, पृ. 92।
18. स्वयंभूदेव, 1944, 'पउमचरिउ', (सं.) डॉ. हीरालाल जैन तथा डॉ. ए. एन. उपाध्ये, भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी।
19. पुष्पदन्त, 1940, 'महापुराणम्', (सं.) पी. एल. वैद्य, माणिकचन्द्र दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला, बम्बई।
20. पुष्पदन्त, 1931, 'जसहरचरिउ', (सं.) हीरालाल जैन, कारंजा जैन पब्लिकेशन सोसायटी, कारंजा, बैरार।
21. पुष्पदन्त, 1933, 'णायकुमारचरिउ', (सं.) हीरालाल जैन, बलात्कारगण ग्रन्थ प्रकाशक मण्डल, कारंजा, बैरार।
22. धनपाल, 1967, 'भविसयत्तकहा', (सं.) सी. डी. दलाल एवं पाण्डुरंग दामोदर गुणे, ओरियन्टल इंस्टीट्यूट, बड़ौदा।

23. सिद्ध सरहपाद, 1957, 'दोहा–कोश', (सं.) महापण्डित राहुल सांकृत्यायन, बिहार–राष्ट्रभाषा–परिषद्, पटना।
24. अभिनवगुप्त, 2008, 'तन्त्रसार', (सं.) डॉ. परमहंस मिश्र, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।
25. तोमर, रामसिंह, 1964, 'प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य तथा उनका हिन्दी साहित्य पर प्रभाव', पूर्वोद्धृत, पृ. 186।
26. अब्दुल रहमान, 2003, 'सन्देश रासक', (सं.) हजारी प्रसाद द्विवेदी एवं विश्वनाथ त्रिपाठी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
27. विद्यापति, वि. सं. 2014, 'कीर्तिलता', (सं.) बाबूराम सक्सैना, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
28. हेमचन्द्राचार्य, 1928, 'प्राकृत व्याकरणम् (सिद्धहेमचन्द्रस्याष्टमोऽध्याय)', मोतीलाल लड्ढा, पूना सिटी।
29. 'प्राकृतपैंगलम्', 1962, (सं.) भोलाशंकर व्यास, प्राकृत ग्रन्थ परिषद्, वाराणसी।
30. राजशेखर सूरि, 1935, 'प्रबन्धकोश', (सं.) जिनविजय, सिंघी जैन ज्ञानपीठ, शान्तिनिकेतन (बंगाल)।
31. आचार्य मेरुतुंग, 'प्रबन्धचिन्तामणि', राजभक्त प्रिंटिंग प्रेस, मुम्बई।
32. 'पुरातनप्रबन्धसंग्रह', 1936, (सं.) जिनविजय मुनि, सिंघी जैन ज्ञानपीठ, कलकत्ता।
33. सिद्ध सरहपाद, 1957, 'दोहा–कोश', (सं.) महापण्डित राहुल सांकृत्यायन, पूर्वोद्धृत, पृ. 6/22।
34. राजस्थानी गंगा, खंड 2, भाग 4, अक्टूबर–दिसम्बर 1986, पृ. 69/1003।
35. मुनि रामसिंह, 1992, 'पाहुड़ दोहा', पूवोद्धृत, पृ. 34/148।
36. राजस्थानी गंगा, खंड 2, भाग 4, अक्टूबर–दिसम्बर 1986, पृ. 11/137।
37. देवसेन, 1932, 'सावयधम्मदोहा', (सं.) हीरालाल जैन, पूर्वोद्धृत, पृ. 28/89।
38. राजस्थानी गंगा, खंड 2, भाग 4, अक्टूबर–दिसम्बर 1986, पृ. 31/440।
39. राहुल सांकृत्यायन, 1945, 'हिन्दी काव्य धारा', किताब महल, इलाहाबाद, नीति वाक्य (अपभ्रंश), पृ. 382/124।
40. राजस्थानी गंगा, खंड 2, भाग 4, अक्टूबर–दिसम्बर 1986, पृ. 13/165।
41. सिद्ध सरहपाद, 1957, 'दोहा–कोश', (सं.) महापण्डित राहुल सांकृत्यायन, पूर्वोद्धृत, भूमिका, पृ. 31।
42. व्यास, चन्द्रशेखर, वि. सं. 2014, 'शेखर का सोरठा', (प्रकाशक) गोविन्द अग्रवाल, चूरू, पृ. 24/103।
43. देवसेन, 1932, 'सावयधम्मदोहा', (सं.) हीरालाल जैन, पूर्वोद्धृत, पृ. 28/87।
44. स्वामी, नरोत्तमदास, 2000, 'राजिया रा दूहा', राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, पृ. 22/114।
45. मुनि रामसिंह, 1992, 'पाहुड़ दोहा', पूवोद्धृत, पृ. 12/1।
46. योगीन्दुदेव, 1978, 'परमात्मप्रकाश', (सं.) ए. एन. उपाध्ये, पूर्वोद्धृत, पृ. 78/80।
47. मुनि रामसिंह, 1992, 'पाहुड़ दोहा', पूवोद्धृत, पृ. 32/135।
48. योगीन्दुदेव, वि. सं. 1993, 'योगसार', (सं.) ए. एन. उपाध्ये, पूर्वोद्धृत, पृ. 15/66।
49. राजस्थानी गंगा, खंड 2, भाग 4, अक्टूबर–दिसम्बर 1986, पृ. 61/890।
50. कविया, डॉ. शक्तिदान, 2000, 'राजस्थानी दूहा संग्रह', साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली, पृ. 66/24।
51. वही, पृ. 64/6।
52. हेमचन्द्राचार्य, 1928, 'प्राकृत व्याकरणम् (सिद्धहेमचन्द्रस्याष्टमोऽध्याय)', पूर्वोद्धृत, 8/4/340, पृ. 148।
53. राजस्थानी गंगा, वर्ष 3, अंक 1, जनवरी–मार्च 1987, पृ. 24/344।
54. देवसेन, 1932, 'सावयधम्मदोहा', (सं.) हीरालाल जैन, पूर्वोद्धृत, पृ. 30/92।
55. स्वामी, नरोत्तमदास, 1961, 'राजस्थान रा दूहा', सादूळ राजस्थानी रिसर्च इंस्टीट्यूट, बीकानेर, पृ. 53/122।
56. हेमचन्द्राचार्य, 1928, 'प्राकृत व्याकरणम् (सिद्धहेमचन्द्रस्याष्टमोऽध्याय)', 8/4/367, पूर्वोद्धृत, पृ. 154।
57. स्वामी, नरोत्तमदास, 1961, 'राजस्थान रा दूहा', पूर्वोद्धृत, पृ. 132/25।
58. मुनि रामसिंह, 1992, 'पाहुड़ दोहा', पूवोद्धृत, पृ. 36/163।
59. बाँकीदास, 1938, 'कायर बावनी', 'बाँकीदास–ग्रंथावली', तीसरा भाग, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, पृ. 28/47।
60. योगीन्दुदेव, 1978, 'परमात्मप्रकाश', (सं.) ए. एन. उपाध्ये, पूर्वोद्धृत, पृ. 24/17।
61. चारण, चन्द्रदान राणीदान, 2015, 'नीति के राजस्थानी दोहे', राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, पृ. 70/81।
62. पुष्पदन्त, 1940, 'महापुराणम्', (सं.) पी. एल. वैद्य, पूर्वोद्धृत, 28/8/3।
63. स्वामी, नरोत्तमदास, 1961, 'राजस्थान रा दूहा', पूर्वोद्धृत, पृ. 59/163।
64. जिनदत्त सूरि, 1967, 'अपभ्रंशकाव्यत्रयी', (सं.) लालचन्द्र भगवानदास गाँधी, पूर्वोद्धृत, पृ. 79/29।
65. 'मंगल', भीमराज भंभीरू, 1944, 'मूंघा–मोती', (प्रकाशक) पी. आर. अग्रवाल, राजगढ़, पृ. 55/217।
66. बाँकीदास, 1938, 'संतोष बावनी', 'बाँकीदास–ग्रंथावली', तीसरा भाग, पूर्वोद्धृत, पृ. 54/5।
67. मुनि रामसिंह, 1992, 'पाहुड़ दोहा', पूवोद्धृत, पृ. 34/155।
68. पुष्पदन्त, 1940, 'महापुराणम्', (सं.) पी. एल. वैद्य, पूर्वोद्धृत, 4/2/1–3।
69. रज्जब, 1965, 'संत कवि रज्जब (सम्प्रदाय और साहित्य)', (सं.) डॉ. व्रजलाल वर्मा, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, पृ. 111।
70. बाँकीदास, 1931, 'मोहमर्दन', 'बाँकीदास–ग्रंथावली', दूसरा भाग, इंडियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग, पृ. 41/9।
71. योगीन्दुदेव, 1978, 'परमात्मप्रकाश', (सं.) ए. एन. उपाध्ये, पूर्वोद्धृत, पृ. 256/140।
72. सरहपाद, 1956, 'चर्यागीत कोष', (सं.) डॉ. प्रबोधचन्द्र शास्त्री एवं शांति भिक्षु, पृ. 186/7।
73. 'मरुधर', भानसिंह शेखावत, 1988, 'भायला रा सोरठा', भूमिका प्रकाशन, जयपुर, पृ. 12।
74. बाँकीदास, वि. सं. 1981, 'नीति मंजरी', 'बाँकीदास–ग्रंथावली', पहला भाग, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, पृ. 64/18।
75. पुष्पदन्त, 1940, 'महापुराणम्', (सं.) पी. एल. वैद्य, पूर्वोद्धृत, 88/21/11–12।
76. आचार्य हेमचन्द्र, 1961, 'छन्दोऽनुशासन', (सं.) ह. दा. वेलणकर, सिंघी जैन शास्त्र विद्यापीठ, भारतीय विद्याभवन, बम्बई, 6/20/9, पृ. 201।
77. जोधा, समुद्र सिंह, 2009, 'राजस्थानी दोहावली', राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, पृ. 45/201।

78. ऊमरदान, 1991, 'तमाखू री ताड़ना', 'ऊमरदान ग्रन्थावली', (सं.) डॉ. शक्तिदान कविया, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, पृ. 171–176, छं. सं. 1, 5 व 6।
79. मलकांण, अस्तअलीखां, 1999, 'कुण्डलिया सतसई', आमना प्रकाशन, जोधपुर।
80. 'केसरी', केसरीकांत शर्मा, 2007, 'आज रा कुण्डलिया', राजस्थानी गंगा, अप्रैल–सितम्बर 2007, पृ. 18।
81. धर्मवर्द्धन, वि. सं. 2017, 'कुण्डलिया बावनी', 'धर्मवर्द्धन ग्रन्थावली', (सं.) अगरचन्द नाहटा, सादूळ राजस्थानी रिसर्च इंस्टीट्यूट, बीकानेर, पृ. 17–34।
82. धर्मवर्द्धन, वि. सं. 2017, 'छप्पय बावनी', 'धर्मवर्द्धन ग्रन्थावली', (सं.) अगरचन्द नाहटा, पूर्वोद्धृत, पृ. 35–52।
83. ऊमरदान, 1991, 'तमाखू री ताड़ना', 'ऊमरदान ग्रन्थावली', (सं.) डॉ. शक्तिदान कविया, पूर्वोद्धृत, पृ. 171–176, छंद सं. 2 से 4, 7 से 21 व 23।
84. ऊमरदान, 1991, 'अमल रा औगण', 'ऊमरदान ग्रन्थावली', (सं.) डॉ. शक्तिदान कविया, पूर्वोद्धृत, पृ. 177–191, छं. सं. 8–44।
85. ऊमरदान, 1991, 'विभचार री बुराई', 'ऊमरदान ग्रन्थावली', (सं.) डॉ. शक्तिदान कविया, पूर्वोद्धृत, पृ. 193–196, छं. सं. 1–10।
86. ऊमरदान, 1991, 'कळदार–करामात', 'ऊमरदान ग्रन्थावली', (सं.) डॉ. शक्तिदान कविया, पूर्वोद्धृत, पृ. 250–252।